भाषा की घण्टी और थिएटर इन एजुकेशन

सुरभि चावला



एक अध्यापक शिक्षक के रूप में मेरा सरोकार मुख्यतः दो कार्यक्रमों से है– प्रारम्भिक शिक्षा का दो-वर्षीय पाठ्यक्रम 'डीएलएड' और पूर्व-विद्यालयी शिक्षा पाठ्यक्रम 'डीपीएसई'। ये दोनों ही पाठ्यक्रम अध्यापकों की सेवा-पूर्व तैयारी से जुड़े हैं। मैं अपने काम को लेकर बहुत ही उत्साहित रहती हूँ। इसलिए, कुछेक प्रकार की विलक्षण कल्पनाएँ मेरे मानस में आकार लेती रहती हैं और इनके माध्यम से मैं अपनी कक्षा 'भाषा शिक्षण' एवं अन्य विषयों में भी नवाचार करने के भरपूर प्रयास करती हूँ। भिन्न-भिन्न पाठ्यचर्यक विषयों जैसे– भाषा, सामाजिक विज्ञान, भूगोल, इतिहास की मूर्त-अमूर्त अवधारणाओं को थिएटर इन एजुकेशन के माध्यम से कैसे विद्यार्थियों तक पहुँचाया जा सकता है, ऐसे बहुत-से सफल प्रयास मैंने अपनी कक्षाओं में किए हैं।

हिन्दी की पाठ्यपुस्तक का कोई भी पाठ 'थिएटर इन एजुकेशन' के ज़रिए विद्यार्थियों तक प्रभावशाली ढंग से पहुँच सकता है, ऐसा एक अनुभव साझा करना चाहती हूँ।

अपना अनुभव बताने से पहले यह स्पष्ट करना चाहती हूँ कि किसी भी अवधारणा या पाठ को नाटक के रूप में प्रस्तुत करना 'थिएटर एन एजुकेशन' नहीं है। ऐसा बताना इसलिए अनिवार्य है क्योंकि विद्यालयों की मॉनीटरिंग के दौरान मैंने पाया कि अध्यापक हिन्दी की पाठ्यपुस्तक में दी गई कहानी या कविता और कभी-कभी यात्रा वृत्तान्त को नाटक में रूपान्तरित करके पढ़ाते हैं और कहते हैं कि वे अपनी कक्षा में 'थिएटर इन एजुकेशन' को शिक्षणशास्त्रीय युक्ति के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। इसी तरह से पर्यावरण अध्ययन की कक्षा में जल चक्र, ऊर्जा व बल को पढ़ाते समय नाटक किया जा रहा था, सामाजिक विज्ञान की कक्षा में 'पलायन' की अवधारणा को नाटक द्वारा समझाने का प्रयास किया जा रहा था और कहा यह जा रहा था कि 'थिएटर

इन एजुकेशन' को अवधारणाएँ स्पष्ट करने के लिए काम में लाया जा रहा है। इन उदाहरणों को ध्यान में रखते हुए मैं यह बताना ज़रूरी समझ रही हूँ कि पढ़ाए जाने वाले पाठ के लिए कक्षा के कुछ विद्यार्थियों को चुनना, उन्हें पाठ से सम्बन्धित संवाद लिखकर देना, संवादों को याद कर कक्षा के बाक़ी विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत कर देना किसी भी सूरत में 'थिएटर एन एजुकेशन' नहीं है।

यह तो बहुत आसानी से बता दिया कि 'थिएटर इन एजुकेशन' नाटक करना भर नहीं है। आगे बढ़ने से पहले मैं यह भी स्पष्ट करने की कोशिश करती हूँ कि 'थिएटर इन एजुकेशन' से मेरा क्या मन्तव्य है।



'थिएटर इन एजुकेशन' वह प्रक्रिया है जिसके ज़रिए हम स्वयं को समझते हैं, दूसरों के व्यवहारों को समझने की कोशिश करते हैं। स्कूल व अन्य सामाजिक संरचनाओं में ख़ुद को रखकर देखते हैं। इसके अन्तर्गत आयोजित मननशील आलोचनात्मक चर्चाएँ सुनने की क्षमता व विचार ग्राह्यता के संवर्द्धन में मदद करती हैं।

यह सीखने के सहभागी तरीक़ों को आधार देता है और दूसरों के साथ मिलकर जानकारियों को हासिल करने, उनका आदान-प्रदान करने, विश्लेषण करने, अपने आसपास घट रही घटनाओं का अवलोकन करने और समीक्षा करने की समझ पैदा करता है। सामाजिक प्रश्नों को समझते हुए समूहजनित संवेदनशीलता का विकास इसके उद्देश्यों में निहित है। शिक्षा में सृजनशीलता के महत्त्व को पोषित करता हुआ यह विभिन्न चिन्तन प्रक्रियाओं के बीच सम्बन्धों को खोजने की क्रिया से संलग्न करता है।

क्या किसी घटना / कहानी / कविता का नाट्य रूपान्तरण कर कक्षा में प्रस्तुत कर देने से यह सब हासिल हो सकता है?

तो फिर कैसे सम्भावनाएँ पैदा हो सकती हैं, एक अनुभव साझा करती हूँ। यह अनुभव उत्तर पश्चिमी दिल्ली के सर्वोदय विद्यालय की कक्षा 5 का है–

विषय : हिन्दी, उपविषय : 'बस की सैर', कक्षा में उपस्थित विद्यार्थी : 47 (सभी छात्राएँ हैं क्योंकि यह सुबह की पाली का कन्या विद्यालय है)।

समय : 40 + 40 = 80 मिनट

'इस विद्यालय में इस तरह की समय सीमा का निर्धारण ज़रूरी नहीं हैं' क्योंकि नर्सरी से पाँचवीं कक्षा तक कक्षानुसार एक ही अध्यापक कक्षा में रहते हैं। उपस्थिति, मिड डे मील, खेलकूद एवं पाठ्यचर्यक विषयों का शिक्षण एक ही अध्यापक के हाथ में रहता है।

'बस की सैर' पाठ के शिक्षण को दो दिनों में बाँटा गया।

प्रथम दिवस

सबसे पहले विद्यार्थियों को 'बस की सैर' के रचनाकार के बारे में बताया। यह भी बताया कि यह एक अनूदित रचना है। यद्यपि इस समय मैंने

अपेक्षा नहीं की थी कि कोई भी विद्यार्थी रचनाकार और अनूदित रचना को लेकर प्रश्न करेगी, पर ऐसा हुआ। एक विद्यार्थी का प्रश्न था– 'अनूदित' से क्या मतलब होता है? मैंने उन्हें संकेत दिया कि उनकी हिन्दी की पाठ्यपुस्तक में एक ऐसी कहानी है जो उनकी अँग्रेज़ी की पाठ्यपुस्तक में भी है। तुरन्त तो नहीं, पर कुछेक पलों के बाद वे याद कर पाए कि हाँ, हाँ, उन्होंने एक नहीं दो-दो कहानियाँ हिन्दी में भी पढ़ी हैं और अँग्रेज़ी में भी। तीन विद्यार्थियों ने बताया कि उन्होंने विक्रम बेताल के कुछ किस्से हिन्दी व अँग्रेज़ी दोनों में पढ़े हैं। एक विद्यार्थी ने बताया कि टीवी पर जो विज्ञापन और सीरियल हिन्दी में देखते हैं, उसने वही चीज़ एक दूसरे चैनल पर भोजपुरी में देखी बिलकुल सेम टू सेम। विद्यार्थियों की इस जानकारी के आधार पर उन्हें अनुवाद व अनूदित रचना की अवधारणा से परिचित करवाया गया।



अब मैं कहानी पर आ ही रही थी कि एक और प्रश्न आ गया, मैडम, मैंने तो सुना है कि हिन्दी में हज़ारों-लाखों कहानियाँ लिखी गई हैं। फिर दूसरी भाषा की कहानी का अनुवाद करके हमारी हिन्दी की बुक में डालना, ऐसी क्या ज़रूरत थी?

पाँचवीं कक्षा की विद्यार्थी से इस तरह के प्रश्न की मुझे कतई उम्मीद नहीं थी। इस बात की मुझे सही जानकारी थी कि पाठ्यपुस्तकों में अनूदित रचनाएँ क्यों देनी चाहिए, पर मुझे यह आशंका थी कि जिस आसानी से प्रश्न पूछा गया क्या उसी आसानी व सहजता से मैं उत्तर भी दे पाऊँगी? दूसरी बात समय की भी थी, 20-22 मिनट तो अभी ही हो चले थे।

ख़ैर, मैंने समय नियोजन की चिन्ता को परे धकेला क्योंकि वह तो मेरे हाथ में था ही, मैंने उन्हीं से प्रश्न किया।

आप लोग सोचिए न, बताइए तमिल में लिखी यह कहानी आपकी पुस्तक में क्यों रखी गई होगी?

कुछेक विद्यार्थी मुस्कराईं। शायद सोच रही होंगी कि मैं स्वयं उत्तर खोजने का वक़्त चाहती हूँ। पर अधिकांश मेरी इस शैली से परिचित थीं कि मैंने उनके सामने कभी भी तैयारशुदा उत्तर नहीं परोसे, चाहे विद्यार्थी माथापच्ची करने में कितना भी समय क्यों न लगाएँ।

पहले हौली-हौली सी खुसर-पुसर हुई फिर चिन्तन की प्रक्रिया कुछ मुखर-सी हुई और एक आवाज़ आई–

मैडम, जिन्होंने ये किताब बनाई है, हो सकता है कि 'बस की सैर' लिखने वाली इनकी रिश्तेदार हो और...

इस विद्यार्थी की बात बीच में ही काटकर उसी की मित्र बोली– नो, नो, एकदम नो। मैंने अपनी किताब के पहले पन्ने पढ़े हैं जहाँ किताब बनाने वालों के नाम लिखे होते हैं। उसमें एक भी नाम साउथ इंडियन नहीं है तो रिश्तेदारी की बात तो हो गई कण्डम। कुछ और सोच।

तीसरी विद्यार्थी ने हस्तक्षेप किया– रिश्तेदार नहीं, दोस्त या जान-पहचान वाली तो हो ही सकती है।

चौथी विद्यार्थी– मैं बताऊँ। मेरा आइडिया तो ये है कि हम सारे लोग न तो मद्रास जा सकते हैं, न मद्रासी पढ़ सकते हैं और हमारी कक्षा में

भी तो ये मद्रासी लड़कियाँ पढ़ती हैं चार-पाँच, तो बस इसलिए किताब बनाने वालों ने सोचा होगा कि चलो इन्हें मद्रास की सैर करवा दो।

चर्चा कहीं अलग रास्ते पर न चल पड़े, इस डर से मैंने यह पूछना ठीक नहीं समझा कि उस बच्ची ने 'मद्रास' शब्द कहाँ से सुना है क्योंकि मैं स्वयं 'चेन्नै' नाम सुनकर बड़ी हुई हूँ और यह तो अभी बहुत छोटी है।'

एक और विद्यार्थी की टिप्पणी थी कि कहानी हिन्दी की हो या बंगाली या तमिल, कहानी तो कहानी है। है तो अपने देश की। हमने तो सुना है कि रूस की कहानी भी हिन्दी में छपती है। अब मैं इन अटकलों को एक आकार देना चाह रही थी और सोच रही थी कि सही बात को सरल से सरलतम रूप में कैसे पेश किया जा सकता है।

बहुत ही आत्मविश्वास के साथ मैं उन्हें बता पाई कि ग़ैर-हिन्दी रचनाओं का अनुवाद कर हिन्दी की पाठ्यपुस्तक में रखने का क्या प्रयोजन हो सकता है।

अब तक हम इस घण्टी की समय सीमा के बिलकुल क़रीब पहुँच गए थे। अगली घण्टी का भी समय हिन्दी के लिए ले सकते हैं क्या, बच्चों की सहमति के साथ मैं आगे बढ़ी।

मैंने हर प्रकार से यह सुनिश्चित कर लिया कि सभी विद्यार्थियों का ध्यान हर तरह की चर्चा से हटकर आज के पाठ 'बस की सैर' पर आ टिका है तो मैंने पाठ पढ़ना शुरू किया– "नाम तो उसका था वल्लिमां, पर उसको सब वल्ली ही कहते थे। उम्र उसकी केवल आठ वर्ष ही थी। उसके मन में सदा ही हर बात को जानने और समझने की इच्छा रहती थी। खेलकूद में उसका कोई साथी नहीं था। वह आमतौर से अकेली ही थी। काम उसे कुछ था नहीं। इसलिए दिनभर वह घर की दहलीज़ पर खड़ी रहती और देखती रहती कि सड़क पर क्या हो रहा है, कौन आ रहा है, कौन जा रहा है, आदि आदि"।

मैंने देखा कि सभी विद्यार्थी एकाग्रचित्त होकर सुन-पढ़ रही थीं। इस अनुच्छेद के ख़त्म होने पर मैंने विद्यार्थियों से पूछा कि वल्ली अपने घर के सामने वाली सड़क पर हो रही हलचलों को देखती रहती थी। क्या हम यहाँ कक्षा में वल्ली के घर के सामने वाली सड़क का दृश्य सृजित कर सकते हैं?

मैंने कक्षा में सबसे पीछे वाली डेस्कों पर बैठी छह विद्यार्थियों को आगे बुलाया और सड़क का दृश्य सृजित करने के लिए कहा।

नोट : मैं यह भी कह सकती थी कि कोई भी छह विद्यार्थी आगे आ जाएँ। 'कोई भी' कहने से सभी विद्यार्थियों की सहभागिता सम्भव नहीं हो पाती। कुछेक विद्यार्थी ही बारम्बार आगे आती हैं।

पीछे के डेस्क वाली विद्यार्थी आगे आईं। उन्होंने आपस में सलाह मशविरा किया और उनमें से एक विद्यार्थी के 'शुरू' कहने पर दृश्य आरम्भ हुआ–

- मैं ख़रबूज्ज़े वाला! मीठे-मीठे ख़रबूज़े लो। ख़रबूज्ज़े लो।
- कबाड़ी वाला! कबाड़ी वाला! रद्दी बेचो। फटे-पुराने कपड़े बेचो।
- सिर पर मटकी रखने का अभिनय करते हुए दूसरी विद्यार्थी जो बाल्टी पकड़ने का अभिनय कर रही थी– चल सखी जल्दी चल। आज तो मेरे घर रिश्तेदार आए हैं। उनका भी खाना बनाना है। जल्दी-जल्दी चलने का अभिनय किया जाता है।
- दो विद्यार्थी झाड़ू लगाते हुए– अजीब क़िस्म के लोग हैं ये। सारा कचरा ऐसे ही बिखेर देते हैं। कह रखा है कि सूखा कचरा और गीला कचरा अलग-अलग फेंको पर नहीं। तमीज़ तो जैसे सीखी ही नहीं!

मूर्ति...'स्टेचू' मेरे ऐसा कहते ही सभी अपने-अपने स्थान पर अपनी मुद्रा के साथ जड़वत हो गए।

मैंने शेष कक्षा से इस दृश्य पर अपने विचार देने के लिए कहा। उनकी टिप्पणियाँ इस प्रकार रहीं–

- ये 'ख़रबूज़े वाला' कह रही थी। ख़रबूज्ज़े वाली भी तो हो सकती है। औरतें भी ठेले-ठूले लेकर काम पर जा रही हैं। क्या ज़रूरी है कि लड़के का ही अभिनय करें?
- मैडम, मैं सोच रही थी कि कहानी तो तमिलनाडु की है। वहाँ तो समन्दर ही समन्दर है। वहाँ ख़रबूज़े मिलते होंगे क्या?
- हाँ, मैं भी कुछ यही सोच रही थी।
- ऐसे तो मटकी वाले सीन में भी गड़बड़ है। ये सीन तो राजस्थान का हो सकता है। ये ख़ुद अलवर की है न। इसलिए शायद इसने वहाँ का ही सीन बना दिया वल्ली की सड़क पर।
- जिस तरह से सीन बना उससे टाइम का अन्दाज़ा नहीं लग पा रहा। झाड़ू लगाने मनुस्पैलटी वाली सुबह छह बजे आ लेती हैं। सब्ज़ी वाले ठेले कोई 10 बजे के बाद आते हैं और रद्दी वाला तो ग्यारह बजे से पहले आता ही नहीं।

इस विद्यार्थी की टिप्पणी पर इधर-उधर से आवाज़ें आईं– ये वल्ली की सड़क है, तुम्हारा मुहल्ला नहीं। लगभग पूरी कक्षा को यह आपत्ति थी कि कहानी दिल्ली या राजस्थान की नहीं है तो यहाँ का दृश्य क्यों?

मैंने कहा– चलिए मान लेते हैं कि हमारे आसपास की ही कहानी है तो क्या वल्ली यही सब देखती होगी? इस सवाल पर उत्तर मिले–

- एक-दो पशु जैसे कुत्ता आदि ज़रूर होने चाहिए थे। अगर छोटे लोगों की कालोनी है तो कुत्ते, गाय, बैल तो घूमते मिल ही जाएँगे।
- एक-दो राहगीर भी हो सकते हैं इस सड़क पर।
- कोई छोटा-मोटा वाहन जैसे– रिक्शा, साइकिल, टैम्पू भी गुज़र सकता है। ये सब होगा तभी तो वल्ली को मज़ा आएगा। नहीं तो क्या देखेगी वह पूरे दिन।
- बच्चों की रैली भी गुज़ार सकते हैं यहाँ इस सड़क पर। स्वच्छता अभियान की रैली।

इस टिप्पणी पर तुरन्त प्रतिक्रिया हुई। रैली नहीं। क्योंकि रैली में तो वल्ली ख़ुद शामिल होती न।

- मैं होती तो दो पड़ोसियों का झगड़ा ज़रूर दिखाती। हमारी गली में तो ये रोज़ की बात है।

इन टिप्पणियों के बाद गली का दृश्य उपस्थित कर रही विद्यार्थियों से पूछा गया कि उन्होंने यही दृश्य क्यों प्रस्तुत किए?

उनके उत्तर इस प्रकार थे–

- मैम आप जब कहानी पढ़ रही थीं, आपके पढ़ने के साथ-साथ वल्ली मुझमें उतर आई थी, मुझे लगा वल्ली मेरी ही गली में खड़ी है। बस मैंने तो अपनी गली का दृश्य ही सामने रखा। मेरी कल्पना में तमिलनाडु की गली तो आ ही नहीं सकती। मैंने न तो वहाँ की फ़िल्म कभी देखी। बस इतना पता है कि वहाँ समुद्र होता है, ढेर सारे मन्दिर होते हैं।
- मुझे अपने स्कूल के बाहर की सड़क का भान हो रहा था। शेष विद्यार्थियों के भी यही उत्तर थे कि उन्हें लग रहा था कि उनके घर के बाहर वाली सड़क ही होगी।

साथियों, 'बस की सैर' के पहले अनुच्छेद के बाद की गई इस गतिविधि को 'थिएटर इन

एजुकेशन' की भाषा में 'थॉट ट्रैकिंग' की संज्ञा दी गई है जो साहित्य पठन की 'रीडर रिस्पॉन्स थ्योरी' से प्रभावित है।

यह गतिविधि विद्यार्थियों यानी कि 'पाठकों' को बाध्य नहीं करती कि वे रचनाकार के विचारों के साथ एकाकार हो जाएँ।

आमतौर पर हमारी कक्षाओं में कविता / कहानी या और भी किसी तरह की पठन सामग्री पढ़ाते समय अध्यापक कहते हैं–

"यहाँ पर लेखक कहता है कि ....।"

जैसे ही अध्यापक इस तरह की बात कहते हैं तो समझ में यही आता है कि कक्षा में पाठक का अपना कोई वजूद 'स्पेस' नहीं है। हमें वही मानना है, वही सोचना है जो लेखक कह रहा / रही है। अध्यापक के इस वाक्य से यह भी अर्थ निकलता है कि हरेक पाठ एक निश्चित अर्थ लिए हुए होता है, जो लेखक ने तय कर दिया है। पाठक उसके आगे-पीछे नहीं जा सकते। ठीक इसके विपरीत 'थिएटर इन एजुकेशन' की 'थॉट ट्रैकिंग' गतिविधि यह बताने की कोशिश कर रही है कि हर पाठक अपने-आप में अद्वितीय है। किसी भी सामग्री को पढ़ते समय पाठक उस सामग्री में ख़ुद को उतार लेते हैं। हरेक पाठ का एक ही अर्थ निकलेगा, यह ज़रूरी नहीं है। किसी पंक्ति की कोई एक निश्चित व्याख्या हो, यह असम्भव है (माननीय न्यायालयों के निर्णयों को यहाँ छोड़ दिया जाए)। यह गतिविधि इस बात को भी पुष्ट करती है कि पाठक अर्थ ढूँढ़ने की कोशिश कर रहे हैं, न कि सामग्री अपने-आप कोई अर्थ दे रही है।

'थॉट ट्रैकिंग' के बाद की गतिविधि का नाम है 'रोल इन रोल'। 'थिएटर इन एजुकेशन' से जुड़े कुछ साथी इस गतिविधि को 'बुश' भी कहते हैं। 'बुश' नाम जादूगरी के खेल से लिया गया है। जादूगरों को जब भी किसी चीज़ को ग़ायब करना होता है तो छड़ी घुमाते हैं और कहते हैं 'बुश'। यहाँ पर 'बुश' का सन्दर्भ इसलिए लिया गया है कि यदि अध्यापक को पाठ में आए किसी चरित्र / पात्र को किसी भी पाठक की नज़र से जानना है तो वह उस विद्यार्थी के सिर पर हाथ रखकर कहेगी / कहेगा 'बुश'। यानी अब आप 'आप' नहीं हैं और उस पात्र की तरह बोलेंगे।

इस गतिविधि के क्रियान्वयन हेतु विद्यार्थियों को निर्देश दिए गए कि अब जिसके सिर पर हाथ रखूँगी वह वल्ली की भूमिका में आ जाएगी और वल्ली सड़क पर खड़ी क्या देखती है, क्या सोचती है, क्या कुछ कहना चाहती है इसपर बात करेगी।

'रोल इन रोल' से प्राप्त प्रतिक्रियाएँ–

- पहली विद्यार्थी (बहुत ही अचकचाते हुए)

मैडम मैं अपने-आप को बल्ली के रूप में ला ही नहीं पा रही। मैं तो तब से यह सवाल कुँधियाए जा रही थी कि वल्ली ऐसा कर भी कैसे सकती है? हमारे घर में तो घर से स्कूल, फिर स्कूल से घर सीधे। इधर-उधर देखने का तो मतलब ही नहीं।

- दूसरी विद्यार्थी (और भी अधिक हिचकिचाते हुए)

मैडम, मैं ख़ुद नहीं सोच पा रही ख़ुद को वल्ली जैसा। वल्ली घर की सड़क पर पूरा दिन रह भी कैसे सकती है, आख़िर हमारी तरह लड़की ही तो है। उसकी दद्दी, अम्मा ने इजाज़त कैसे दे दी?

इन दो लड़कियों के उत्तरों ने मानो कक्षा की दूसरी लड़कियों को भी ज़ुबान दे दी। मात्र तीन लड़कियों को छोड़कर शेष के स्वर थे– वे सपने में भी नहीं सोच सकतीं कि उन्हें उनके माँ-पिता कभी ऐसी आज़ादी देंगे। वे अगर बाहर सड़क पर खड़े भी हो लेंगी तो अड़ोसी-पड़ोसी उनके कान पकड़कर घर पहुँचा देंगे।

किसी-किसी ने तो यह भी कहा कि हमारे यहाँ का तो माहौल ही ख़राब है। हम तो ख़ुद ही

न निकलें घर से बाहर। जिन तीन विद्यार्थियों ने इस विषय पर चुप्पी साधी हुई थी, उनसे पूछा तो एक विद्यार्थी ने अपनी प्रतिक्रिया दी–

(पर यह वल्ली की भूमिका में उतरकर कही गई बात न थी) मैं और बड़की यानी कि मेरी बड़ी बहन, और पास की झुग्गी वाली भौजी हम तीनों मिलकर अपने ओसारे में चौकी लेकर बैठ जाते हैं। पूरी गली दिखती है वहाँ से हमें। हम ख़ूब मज़े लेते हैं। हमें तो लगता है कि कोई फ़िल्म चल रही है। मुझे तो कोई दिन-रात खड़े होने का मौक़ा दे तो भी मैं बोर नहीं होऊँगी।



दूसरी विद्यार्थी– मैं भी इसी गली की हूँ, कोई सात घर छोड़कर। मैं तो कभी कूड़ा डालने के बहाने तो कभी बुहारने के बहाने बाहर के सौ चक्कर तो लगा डालती हूँ। ऐसा क्यों करती हूँ कभी सोचा नहीं। पर बाहर देखे बग़ैर जमता नहीं है कुछ।

टीवी पर कितनी अच्छी फ़िल्म आ रही हो पर गली को देखना बहुत मज़ेदार है।

तीसरी विद्यार्थी– मेरा तो क़िस्सा ही अलग है। हम तो गली में होने वाली हलचलों से टाइम का अन्दाज़ा लगाते हैं। जगतराज की दूकान का खुलना, मिश्राइन आण्टी की धोती सूखने डलना, सबका फिक्स्ड टाइम है। हमारी अम्मा तो गली में बढ़ती घटती धूप से जान लेती हैं कि कितना बज गया है।

समय सीमा को ध्यान में रखते हुए पाठ यहीं पर छोड़ दिया गया। हम सबने अपनी कक्षा इस प्रश्न के साथ छोड़ी कि हम लड़कियों को गली या सड़क पर खड़े होकर / बैठकर कुछ भी देखने में क्या आड़े आता है और क्यों आता है?

मेरे कुछ साथी अध्यापक शिक्षकों ने मेरी इस तरह की कक्षाओं का अवलोकन किया है। उन्होंने पाया कि इस तरह की कक्षा की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि अध्यापक की मेज़ के पास बैठे विद्यार्थियों से लेकर सबसे पिछली पंक्ति तक के विद्यार्थी पठन प्रक्रिया से जुड़े रहते हैं। दूसरी उपलब्धि यह कि कभी न बोलने वाली विद्यार्थियों के भी बिना किसी संकोच के विचार सुनाई देते हैं और तीसरी उपलब्धि यह कि पाठ से उपज रहे जिन बिन्दुओं को वे स्वयं नहीं पकड़ पाते, ये विद्यार्थी उन तक भी पहुँच जाते हैं।

एक अध्यापक शिक्षक ने बताया कि उसने यही पाठ दूसरे अनुभाग में अभी हाल में ही पढ़ाया है। उस कक्षा में प्रश्न किया गया कि वल्ली सड़क पर खड़े-खड़े क्या देखती, सोचती रहती होगी?

इसके उत्तर में विद्यार्थियों से बड़े सतही से उत्तर मिले कि लोगों का आना-जाना, वाहनों का आना-जाना आदि।

वल्ली यह सोचती होगी कि काश वह भी उनकी जगह होती तो उसकी तरह घूमती-फिरती और मज़े लेती! उस अध्यापिका ने बताया कि जिस तरह के विमर्श के बिन्दु यहाँ उभरे हैं वैसा सीधा-सपाट पढ़ाने से नहीं हो पाता। मेरे इन साथियों ने जहाँ एक ओर प्रशंसा की तो

दूसरी ओर कुछ आशंकाओं और चुनौतियों की तरफ़ भी संकेत किया, जैसे—

- कहानी का मज़ा तो मौन पठन में है, एक-एक अनुच्छेद पढ़ने, उसपर विचार करने से, उससे जुड़ी गतिविधि करने से तो कहानी का सारा मज़ा ही ख़त्म हो जाएगा।
- विद्यार्थियों के उच्चारण का तो पता लग ही नहीं पाएगा क्योंकि उनसे तो पढ़वाया ही नहीं जा रहा है।
- समय प्रबन्धन की चुनौती को कैसे हल किया जाएगा।

यदि हमारे पाठक मित्रों की भी ऐसी प्रतिक्रियाएँ हैं तो मैं कुछ इस प्रकार से अपनी बात रखना चाहूँगी।

पाठ्यपुस्तक में मौजूद हर रचना एक ही तरह से पढ़ाई जाएगी, ऐसा ज़रूरी नहीं है। कुछ कहानियों का मज़ा निश्चित रूप से मौन पठन में ही है।

यह हमारे विवेक पर निर्भर करता है कि हम किस रचना को 'थिएटर इन एजुकेशन' के साथ कक्षा में ले सकते हैं। जहाँ तक विद्यार्थियों के उच्चारण को जानने और समझने की बात है तो क्या हिन्दी की घण्टी में कहानी / कविता को पढ़वाकर ही उच्चारण जाना समझा जा सकता है?

इस सवाल से पहले तो एक और अहम सवाल है कि हम विद्यार्थियों की उच्चारण शैली जानना क्यों चाहते हैं, अगर हमारी मंशा यह है कि कक्षा में बोलकर पाठ पढ़वाने से हम अध्यापक उनका उच्चारण ठीक करेंगे तो यह कार्य किसी भी दृष्टि से उचित नहीं होगा क्योंकि हम सब जानते हैं कि हमारे बोलने के तौर-तरीक़ों पर स्थानीय प्रभाव काबिज़ रहता है। ऐसे में प्राथमिक स्तर पर जहाँ भाषा शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थियों को सशक्त अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करना है, वहाँ उच्चारण ठीक करवाने की क़वायदें उनकी भाषाई क्षमता को समुन्नत करने की जगह कुन्द ही करेंगी।

कक्षा ही नहीं, समूचे विद्यालय परिसर में विद्यार्थियों के साथ संवाद करने के अनेक मौक़े सुलभ होते हैं। ये वे मौक़े होते हैं जिनसे हमें विद्यार्थियों के सांस्कृतिक-सामाजिक सन्दर्भों, उनकी भाषिक क्षमता 'सम्पदा, भाषा शैली', उनकी आकांक्षाओं-अपेक्षाओं का पता चलता है। उच्चारण के सवाल पर मैं यही कहना चाहूँगी।

समय प्रबन्धन के विषय में मेरा उत्तर यह है कि हम स्वयं से सवाल करें कि भाषा के अध्यापक के नाते हमारा मक़सद पाठ का निपटारा करना है या पाठ के ज़रिए विद्यार्थियों को बोलने-कहने-सुनने, तर्क करने, पाठ से उपजे विमर्श के मुद्दों पर चर्चा करने के अवसर सुलभ कराना है? मैंने ये देखा है कि कुछ पाठों पर इस तरह से चर्चा करके विद्यार्थियों में अगले पाठ के लिए जिज्ञासा पैदा हुई। इससे सवालों को हल करने में समय कम लगता पाया गया है। आप कृपया इसे अतिशयोक्ति न समझें, 'थिएटर इन एजुकेशन' के समावेशन ने पढ़ने में अरुचि रखने वाली विद्यार्थियों में पढ़ने के प्रति उतावलापन व ललक पैदा की है। जल्दी-जल्दी उबाऊ भरी घण्टियों को निपटाने की जगह मज़ेदार तरीक़े से पाठ को कक्षा में परोसना, यदि दोनों में अन्तर समझ आ जाए तो समय प्रबन्धन के मसले का हल अपने-आप ही मिल जाता है।

सभी चित्र : पुस्तक *बस की सैर*, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया से साभार।

सुरभि चावला ग्रेट मिशन टीचर ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट, द्वारका, नई दिल्ली में शिक्षक प्रशिक्षक हैं। आपने वार्विक यूनिवर्सिटी, यूके से इंटरनैशनल परफ़ोर्मेंस रिसर्च में और आंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली से ईसीसीई में स्नातकोत्तर किया है। आप नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा द्वारा आयोजित थिएटर इन एजुकेशन की कई कार्यशालाओं में फ़ेसिलिटेटर रही हैं। आपने कई संगठनों और शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं में थिएटर से जुड़ी कार्यशालाएँ आयोजित की हैं और सत्र संचालित किए हैं।

सम्पर्क : chawla.surabhi08@gmail.com